साहित्य और समाज

डॉ0 राजेश कुमार
असि0 प्रोफे0, हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय बी0बी0 नगर, बुलन्दशहर
Email:dr.rajesh.thakur05@gmail.com

सारांश

समाज का प्रत्येक व्यक्ति साहित्य के किसी न किसी रूप से अवश्य ही परिचित होता है। कुछ व्यक्ति उच्च कोटि के काव्य का तथा अन्य व्यवस्थित साहित्य का अध्ययन् करते हैं तो कुछ व्यक्ति लोक–गीतों और लोक–वार्ताओं का चौपाल में बैठकर आनन्द लेते हैं। युवक–युवतियाँ यदि फिल्मी गीतों और कथाओं से दिल बहलाते हैं तो छोटे बच्चे नानी–दादी से परियों की कहानियाँ सुनकर अपना मनोरंजन करते हैं। ग्रामीण किशोरियाँ झूले और हिण्डोले पर झूलते हुए गीत गाकर साहित्य से अपना सम्बन्ध स्थापित करती हैं। कहने का आषय यह है कि प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक व्यक्ति का सम्बन्ध साहित्य से होता ही है और यह सम्बन्ध जीवन भर किसी न किसी रूप में बना रहता है।

प्रस्तावना

साहित्य शब्द की व्युत्पत्ति ''सहित'' शब्द से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ है– ''साथ–साथ हित अथवा कल्याण'' अर्थात् साहित्य वह रचनात्मक विधा है, जिसमें लोक हित की भावना का समावेश रहता है। दूसरे शब्दों में–

साहित्य, शब्द, अर्थ और मानवीय भावों की वह त्रिवेणी है जो कि सतत् तरंगित, प्रवाहित होती रहती है। साहित्य विचारों की वह अभिव्यक्ति है, जो कि समाज का यथार्थवादी आदर्शवादी एवं मानवतावादी दृष्टिकोण उजागर करती है। यह दृष्टिकोण त्रिकालिक स्वरूप लिए होता है, क्योंकि साहित्य न केवल अतीत के मुद्दों एवं विषयों की सार्थक अभिव्यक्ति है अपितु यह वर्तमान में हो रहे परिवर्तन को समाहित करते हुए समाज के गुण–दोषों को हमारे सम्मुख रखता है, ताकि व्यक्ति को समाज का वास्तविक प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर हो सके। क्या सही है? क्या उचित है या क्या अनुचित है? यह निर्णय साहित्य, समाज का दर्पण बनकर करता है। साहित्य का कोई निश्चित स्वरूप नहीं है। यह तो समाज के परिवर्तन के साथ अपने रूप, अंग, विषय वस्तु, शैली संरचना और टैकनीक में बदलाव करता रहता है या विविध रूपों में समाज के समक्ष प्रकट होता है।

सामान्य शब्दों में कहा जा सकता है कि मानव मस्तिष्क द्वारा अर्जित ज्ञान का लिखित

तथा अलिखित समस्त भण्डार साहित्य ही है। जहाँ एक ओर कुरान, बाइबिल, रामचरितमानस, भगवद्गीता, अभिज्ञान शाकुन्तलम् आदि ग्रन्थ साहित्य का प्रतिनिधित्व करते हैं, वही दूसरी ओर भेड़ चराने वाले गड़रिये के गीत तथा पनघट पर पानी भरती हुई पनिहारियों के गीत भी साहित्य की ही धरोहर हैं।

डॉ0 श्याम सुन्दर दास जी ने भी साहित्य का अर्थ इसी प्रकार से प्रस्तुत किया है, उनके अनुसार ''सामाजिक मस्तिष्क अपने पोषण के लिए जो भाव सामग्री निकालकर समाज को सौंपता है, उसी के संचित भण्डार का नाम साहित्य है।''[1]

डॉ0 देवराज साहित्य को परिवेश की प्रतिक्रिया के रूप में देखते हैं– ''साहित्य मनुष्य की उसके परिवेश के प्रति आवश्यक प्रतिक्रिया है।''[2]

डॉ0 बैजनाथ प्रसाद शुक्ल– साहित्य और समाज को साहित्य और अर्थ की भाँति एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध मानते हैं– ''युग और साहित्य परस्पर 'गिरा अर्थ' की भाँति सम्पृक्त हैं। साहित्य को उपजीव्य सामग्री युग प्रदान करता है और साहित्यकारर उस युग बोध को सम्प्रेषित कर एक शाश्वत रसात्मक सृष्टि करता है। मानव सचेतन, ज्ञानवान और संवेदनशील प्राणी होने के कारण अपने परिवेश से प्रभावित होकर अपनी संवेगानुभूतियों को साहित्य के रूप में अभिव्यक्त करता है। साहित्य में जब कोई नई विधा जन्म लेती है अथवा परम्परागत साहित्यिक परिपाटी में जब कोई परिवर्तनक्रम होता है तो वह अकारण नहीं उसके परिपार्श्व में युगीन पृष्ठभूमि के कारण साहित्यिक युगबोध क्रियाशील रहता है। साहित्यकार मानवी परिवेशगत मूल्यों के उद्घाटन का प्रयत्न करता है और उसका यही प्रयत्न साहित्य सृजन करता है।''[3]

प्रत्येक साहित्य का निर्माण उस युग के अनुरूप ही होता है। किसी भी देश अथवा जाति का साहित्य उसकी सभ्यता एवं संस्कृति का परिचायक होता है और प्रत्येक कलाकार अपने युग का प्रतिनिधि नागरिक। वह अपनी सूक्ष्म दृष्टि और सूझ–बूझ से तत्कालीन समय की सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का अध्ययन करके समय के अनुरूप साहित्य का निर्माण करता है। समाज में रहते हुए जो कुछ भी उसके सामने घटित होता है, उसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। घटनीय हो या अघटनीय, सुखद हो या दुखद साहित्यकार उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। तत्कालीन घटनाएँ उसके व्यक्तित्व तथा कृतित्व को पूरी तरह प्रभावित करती हैं। उसके कृतित्व में उन घटनाओं का उल्लेख या प्रभाव यह सिद्ध करता है कि उन घटनाओं या परिस्थितियों में साहित्यकार पूरी तरह रच–बस चुका है, उन्हें मानसिक धरातल पर पूरी तरह भोग चुका है, तभी तो वे कृतित्व का अंग बन पाती हैं। यही मानसिक उद्वलन ही लिखने के लिए प्रेरित करता है। यही कारण है कि साहित्य में समाज की पूरी तस्वीर स्पष्ट झलकती है, समाज के उतार–चढ़ाव पूरी तरह दिखाई देते हैं।

किसी राष्ट्र विशेष की, जाति विशेष की तथा समाज विशेष की परिस्थितियों, मान्यताओं आदि को समझने के लिए तद्युगीन साहित्य का अध्ययन करना आवश्यक होता है, क्योंकि साहित्य तत्कालीन समाज अथवा उस काल को समझने का एक सशक्त माध्यम है। साहित्य अपने समय की सही तस्वीर प्रस्तुत करता है। यदि किसी जाति विशेष के उत्कर्षापकर्ष का उसके

ऊँच–नीच भावों का उसके धार्मिक विचारों और सामाजिक संगठनों का, उसकी ऐतिहासिक घटनाओं का और राजनैतिक परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब देखने के लिए यदि कहीं मिल सकता है तो उसके साहित्य में ही मिल सकता है। ''सामाजिक शक्ति या सजीवता, सामाजिक अशक्ति या निर्जीवता और सामाजिक सभ्यता तथा असभ्यता का द्योतक एकमात्र साहित्य है।''[4]

साहित्यकार भी एक सामाजिक प्राणी है। वह इसी समाज में विचरण करता है, जीवन व्यतीत करता है, उसके प्रत्येक क्रिया–कलाप में प्रत्येक गतिविधि में, प्रत्येक प्रतिक्रिया में उसके समाज के विचार तथा मान्यताएँ अनायास ही प्रतिबिम्बित हो उठते हैं। इसके लिए इसे प्रयत्न नहीं करना पड़ता। हम कलाकार के शिल्प में, चित्रकार के चित्र में, मूर्तिकार की मूर्ति में और साहित्यकार के साहित्य में तद्युगीन परिवेश की झलक को देख सकते हैं। वास्तव में– ''कलाकार जिस सौन्दर्य की सृष्टि करता है, वह समाज निरपेक्ष किसी व्यक्ति की उपज नहीं है, वरन् सामाजिक जीवन और सामाजिक विकास से उसका घनिष्ठ संबंध है।''[5]

साहित्य के अर्थ के प्रस्तुत स्पष्टीकरण द्वारा ज्ञात होता है कि साहित्य का प्रत्यक्ष सम्बन्ध समाज से है। अब प्रश्न यह है कि समाज से क्या तात्पर्य है?

साधारण शब्दों में मनुष्यों का समूह ही समाज हैं एकाकी या अकेला रहकर मनुष्य न तो उन्नति ही कर सकता है और न पूर्ण ही बनता है। अपने परिवार के साथ मिलकर ही जीवन की परिस्थितियों से जूझता है। परिवार मिलकर ही छोटे या बड़े समाज की रचना करते हैं।

इस प्रकार के समाज से गाँव, नगर, देश और विश्व का विशाल रूप बनते हैं। यद्यपि मानव आज जाति, धर्म व संप्रदाय के आधार पर बंट गया है लेकिन मूल रूप से अपने हृदय तथा मस्तिष्क के चिंतन से वह एक ही है। साहित्य और समाज इसी दिशा में एक हो जाते हैं। किसी समाज का साहित्य के बिना होना और किसी साहित्य का समाज से न जुड़ना संभव नहीं। साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक हैं एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती। किसी कवि ने इस संबंध में उचित ही कहा है–

अंधकार है वहाँ, जहाँ आदित्य नहीं है।
मुर्दा है वह देश, जहाँ साहित्य नहीं है।

साहित्य और समाज

साहित्य और समाज का प्रत्यक्ष सम्बन्ध है, इसी सम्बन्ध को विद्वानों ने विभिन्न उक्तियों द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया है। सामान्य रूप से कहा जाता है कि ''साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है।'' या ''साहित्य समाज का दर्पण है।'' इन उक्तियों का आशय यही है कि साहित्य में वो सब कुछ स्पष्ट रूप से प्रस्फूटित होता है, जो समाज में विद्यमान होता है। जिस प्रकार दर्पण के सम्मुख जो भी आकृति लायी जाती है वैसा ही प्रतिबिम्बित उसका बनता है, उसी प्रकार समाज में जो भी कुछ विकसित एवं निहित होता है, वही साहित्य में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष प्रस्तुत होता है। कई बार साहित्य समाज को एक बेहतर समाज बनने के लिए प्रेरित करता है, वहीं कुछ विद्वानों ने कहा है ''साहित्य समाज का दीपक है।'' इस उक्ति का भी आशय यही है कि जिस प्रकार दीपक अपने वातावरण को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार ''साहित्य समाज को प्रकाश

की ओर ले जाता है।'' उसे अधिक मानवीय बनने की प्रेरणा देता है। जो सम्बन्ध शरीर और मस्तिष्क का होता है। वही सम्बन्ध समाज और साहित्य में है। साहित्य समाज रूपी शरीर का मस्तिश्क है। जिस प्रकार मानव–मस्तिष्क मानव शरीर के भूत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों के विषय में चिन्तन करता है तथा विवरण एवं योजनाएँ प्रस्तुत करता है, उसी प्रकार साहित्य भी समाज के विषय में भूतकाल का विवरण तथा भविष्य की योजनाएँ प्रस्तुत करता है।

यह तो स्पष्ट है कि समाज और साहित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है परन्तु प्रश्न यह है कि इन दोनों का क्या सम्बन्ध है? कौन किसको प्रभावित करता है? सत्य तो यह है कि समाज और साहित्य दोनों एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं। साहित्य समाज में रहकर ही रचा जाता है। साहित्य कोई कोरी कल्पना मात्र नहीं होता है। जो कुछ समाज में घटित होता है वही व्यवस्थित तथा सुन्दर ढंग से साहित्य में प्रस्तुत हो जाता है। वास्तव में साहित्य विश्व मानव का हृदय है। उसमें हमारे हृदय के ही समान सुख–दुःख, आशा–निराषा, भय–निर्भयता एवं अश्रु–ह्रास का स्पष्ट स्पन्दन रहता है। साहित्य को इसलिए सम्पूर्ण समाज का दर्पण भी कहा जाता है। साहित्य वह दर्पण है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी हृदयगत भावनाओं को, विशेषताओं को, अच्छाईयों बुराईयों को अपनी वीरता, भीरूता को अपनी हिम्मतों–कमजोरियों को, अपनी प्रेम–लीलाओं और घृणामयी चेष्टाओं को, सारांशतः उन सभी मानसिक व्यापारों को जिनमें मानव व्यस्त रहता है, देख सकता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि ''समाज–साहित्य'' को जन्म देता है तथा उसे समस्त विषय–सामग्री प्रदान करता है। जहाँ एक बार समाज साहित्य को प्रभावित करता है तथा उसे विषय–सामग्री प्रदान करता है वही दूसरी ओर साहित्य और साहित्यकार भी समाज को प्रभावित किए बिना नहीं रहते हैं। उच्च कोटि का साहित्य समाज को दिशा प्रदान करता है। समाज की वर्तमान गतिविधियों को ध्यान में रखकर उसके भविष्य की नियमावली तथा योजनाओं को साहित्य ही निर्धारित करता है वही साथ ही साथ समाज को साहस, आशा तथा विश्वास भी प्रदान करता है। ''रामचन्द्र शुक्ल'' के शब्दों में प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब है।''[6]

उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि निसंदेह साहित्य और समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। साहित्य और समाज दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं तथा दोनों ही निरन्तर रूप से एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। समाज में रहकर ही साहित्यकार साहित्य का सृजन करता है तथा साहित्यकार के विचारों द्वारा समाज को नवीन दिशा प्राप्त होती है।

संदर्भ सूची

1. डॉ0 श्याम सुन्दर दास– *हिंदी भाषा और साहित्य*
2. डॉ0 देवराज– *साहित्य चित्र*
3. डॉ0 बैजनाथ प्रसाद शुक्ल– *भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना*
4. डॉ0 महेन्द्र चतुर्वेदी–निबंध चयनिका (आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी साहित्य की महत्ता)
5. डॉ0 रामविलास शर्मा– *आस्था और सौन्दर्य, भूमिका।*
6. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल– ग्रंथावली भाग–05